डाक्टर अम्बेदकरसे भेंटवार्तामें महत्त्वपूर्ण अनेकान्त-चर्चा

१४ नवम्बर १९४८ को सिद्धार्थ कालेज बम्बईके प्रोफेसर और अनेक ग्रन्थोंके निर्माता सर्वतंत्र-स्वतंत्र पं० माधवाचार्य विद्यामार्तण्डके साथ हमें डाक्टर अम्बेडकरसे, जो स्वतन्त्र भारतको विधान-मसविदा समितिके अध्यक्ष थे और जिन्हें स्वतन्त्र भारतके विधान-निर्माता होनेसे वर्तमान भारतमें 'मनु' की संज्ञा दी जाती है तथा कानूनके विशेषज्ञ विद्वानोंमें सर्वोच्च एवं विख्यात विद्वान् माने जाते हैं, भेंट करनेका अवसर मिला था।

डाक्टर सा० कानूनके पण्डित तो थे ही, दर्शनशास्त्रके भी विद्वान् थे, यह हमें तब पता चला, जब उनसे दार्शनिक चर्चा-वार्ता हुई। उन्होंने विभिन्न दर्शनोंका गहरा एवं तुलनात्मक अध्ययन किया है। बौद्ध-दर्शन और जैन दर्शनका भी अच्छा परिशीलन किया है।

जब हम उनसे मिले तब हमारे हाथमें 'अनेकान्त' के प्रथम वर्षकी फाइल थी, जिसमें उक्त प्रोफेसर सा० का एक निबन्ध 'भारतीय दर्शनशास्त्र' शीर्षक छपा था और उसमें प्रोफेसर सा० ने जैन दर्शनके स्याद्वाद और अनेकान्त सिद्धान्त पर उत्तम विचार प्रकट किये हैं। डाक्टर सा० ने बड़े सौजन्यसे हमसे कुछ प्रश्न किये और जिनका उत्तर हमने दिया। यह प्रश्नोत्तर महत्त्वका है। अतः यहाँ दे रहे हैं।

डॉक्टर सा०—आपके इस अखबारका नाम 'अनेकान्त' क्यों है ?

मैं—'अनेकान्त' जैन दर्शनका एक प्रमुख सिद्धान्त है, जिसका अर्थ नानाधर्मात्मक वस्तु है। अनेकका अर्थ नाना है और अन्तका अर्थ धर्म है और इसलिए दोनोंका सम्मिलित अर्थ नानाधर्मात्मक वस्तु है। जैन दर्शनमें विश्वकी सभी वस्तुएँ (पदार्थ) नानाधर्मात्मक प्रतिपादित हैं। एक घड़ेको लीजिए। वह मृत्तिका (मिट्टी) की अपेक्षा शाश्वत (नित्य, एक, अभेदरूप) है—उसका उस अपेक्षासे न नाश होता है और न उत्पाद होता है। किन्तु उसकी कपालादि अवस्थाओंकी अपेक्षासे वह अशाश्वत (अनित्य, अनेक, भेदरूप) है—उसका उन अवस्थाओंकी अपेक्षासे नाश भी होता है, उत्पाद भी होता है। इस तरह घड़ा शाश्वत-अशाश्वत (नित्यानित्य), एकानेक और भेदाभेदरूप होनेसे अनेकान्तात्मक है। इसी प्रकार सभी वस्तुएँ विधि-प्रतिषेधरूप उभयात्मक होनेसे अनेकान्तात्मक हैं। एक सरल उदाहरण और दे रहा हूँ। जिसे हम लोग डाक्टर या वकील कहकर सम्बोधित करते हैं उसे उनका पुत्र 'पिताजी' कहकर पुकारता है और उनके पिताजी उसे 'बेटा' कहकर बुलाते हैं। इसी तरह भतीजा 'चाचा' और चाचा 'भतीजा' तथा भानजा 'मामा' और मामा 'भानजा' कहकर बुलाते हैं। यह सब व्यवहार या सम्बन्ध डाक्टर या वकील-में एक साथ एक कालमें होते या हो सकते हैं, जब जिसकी विवक्षा होगी, तब। हाँ, यह हो सकता है कि जब जिसकी विवक्षा होगी वह मुख्य और शेष सभी व्यवहार या सम्बन्ध या धर्म गौण हो जायेंगे, उनका लोप या अभाव नहीं होगा। यही विश्वकी सभी वस्तुओंके विषयमें है। वस्तुके इस नानाधर्मात्मक स्वभाव-रूप अनेकान्तसिद्धान्तका सूचन या ज्ञापन करनेके लिए इस अखबारका नाम **'अनेकान्त'** रखा गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डॉक्टर सा०—दर्शनका प्रयोजन तो जगत्में शान्तिका मार्ग दिखानेका है। किन्तु जितने दर्शन हैं वे सब परस्परमें विवाद करते हैं। उनमें खण्डन-मण्डन और एक-दूसरेको बुरा कहनेके सिवाय कुछ नहीं मालूम पड़ता है ?

मैं—निःसन्देह आपका यह कहना ठीक है कि 'दर्शन' का प्रयोजन जगत्में शान्तिका मार्ग-प्रदर्शन है और इसी लिए दर्शनशास्त्रका उदय हुआ है। जब लोकमें धर्मके नामपर अन्धश्रद्धा बढ़ गयी और लोगोंका गतानुगतिक प्रवर्त्तन होने लगा, तो दर्शनशास्त्र बनाने पड़े। दर्शनशास्त्र हमें बताता है कि अपने हितका मार्ग परीक्षा करके चुनो। **'धेलेकी हंडी भी ठोक-बजाकर खरीदी जाती है'** तो धर्मका भी ग्रहण ठोक-बजाकर करो। अमुक पुस्तकमें ऐसा लिखा है अथवा अमुक व्यक्तिका यह कथन है, इतने मात्रसे उसे मत मानो। अपने विवेकसे उसकी जांच करो, युक्त हो तो मानो, अन्यथा नहीं। जैन दर्शन तो स्पष्ट कहता और घोषणा करता है—

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः॥

मूलमें सभी दर्शनकारोंका यही अभिप्राय रहा है कि मेरे इस दर्शनसे जगत्को शान्तिका मार्ग मिले। किन्तु उत्तर कालमें पक्षाग्रह आदिसे उनके अनुयायियोंने उनके उस स्वच्छ अभिप्रायको सुरक्षित नहीं रखा और वे परपक्षखण्डन एवं स्वपक्षमण्डनके दल-दलमें फँस गये। इससे वे दर्शन विवादजनक हो गये। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जैन दर्शनमें विवादोंको समन्वित करने और मिटानेके लिए स्याद्वाद और अहिंसा ये दो शान्तिपूर्ण तरीके स्वीकार किये गये हैं। अहिंसाका तरीका आक्षेप और आक्रमणको रोकता है तथा स्याद्वाद उन सम्बन्धों, व्यवहारों एवं धर्मोंका समन्वय कर उनकी व्यवस्था करता है। कौन सम्बन्ध या धर्म वस्तुमें किस विवक्षासे है, यह स्याद्वाद व्यवस्थित करता है। उदाहरणार्थ द्रव्य (सामान्य) की अपेक्षा वस्तु सदा नित्य है और अवस्थाओं—परिणमनोंकी अपेक्षा वही वस्तु अनित्य है। पहलेमें द्रव्यार्थिकनयका दृष्टिकोण विवक्षित है और दूसरेमें पर्यायार्थिकनयका दृष्टिकोण है। जैन दर्शनमें असत्यार्थ—एकान्त मान्यताका अवश्य निषेध किया जाता है और यह जरूरी भी है। अन्यथा सन्देह, विपर्यय और अनध्यवसायसे वस्तुका सम्यग्ज्ञान नहीं हो पायेगा। घटमें घटका ज्ञान ही तो सत्य है, अघटमें घटका ज्ञान सत्य नहीं है। उसे कोई सत्य मानता है तो उसका निषेध तो करना ही पड़ेगा।

डाक्टर सा०—समन्वयका मार्ग तो ठीक नहीं है। उससे जनताको न शान्ति मिल सकती है और न सही मार्ग। हाँ, जो विरोधी है उसका निराकरण होना ही चाहिए ?

मैं—मेरा अभिप्राय यह है कि वस्तुमें सतत विद्यमान दो धर्मोंमेंसे एक-एक धर्मको ही यदि कोई मानता है और विरोधी दिखनेसे दूसरे धर्मका वह निराकरण करता है तो स्याद्वाद द्वारा यह बतलाया जाता है कि 'स्यात्'—कथंचित्—अमुक दृष्टिसे अमुक धर्म है और 'स्यात्'—कथंचित्—अमुक दृष्टिसे अमुक धर्म है और इस तरह दोनों धर्म वस्तुमें हैं। जैसे, वेदान्ती आत्माको सर्वथा नित्य और बौद्ध उसे सर्वथा अनित्य (क्षणिक) मानते हैं। जैन दर्शन स्याद्वाद सिद्धान्तसे बतलाता है कि द्रव्यकी विवक्षासे वेदान्तीका आत्माको नित्य मानना सही है और अवस्था—परिणमनकी अपेक्षासे आत्माको अनित्य मानना बौद्धका कथन ठीक है। किन्तु आत्मा न सर्वथा नित्य है और न सर्वथा अनित्य है। अतएव दोनों—वेदान्ती और बौद्धका आत्माको कथंचित् नित्य (द्रव्य दृष्टिसे) और कथंचित् अनित्य (पर्यायदृष्टिसे) उभयात्मक स्वीकार करना ही वस्तुस्वरूपका प्रतिपादन कहा जायेगा। उसकी गलत ऐकान्तिक मान्यताका तो निषेध करना ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिए। यही समन्वयका मार्ग है। हमारा सब सच और दूसरेका सब झूठ, यह वस्तु-निर्णयकी सम्यक् नीति नहीं है। हिन्दुस्तान हिन्दुओंका ही है, ऐसा मानने और कहनेमें झगड़ा है। किन्तु वह उसके निवासी जैनों, बौद्धों, मुसलमानों आदि दूसरोंका भी है, ऐसा मानने तथा कहनेमें झगड़ा नहीं होता। स्याद्वाद यही बतलाता है। जब हम स्याद्वादको दृष्टिमें रखकर कुछ कहते हैं या व्यवहार करते हैं तो सत्यार्थकी प्राप्तिमें कोई भी विरोधी नहीं मिलेगा, जिसका निराकरण करना पड़े।

डाक्टर सा०—बुद्ध और महावीरकी सेवाधर्मकी नीति अच्छी है। उसे अपनानेसे ही जनताको शान्ति मिल सकती है ?

मैं—सेवाधर्म अहिंसाका ही एक अङ्ग है। अहिंसकको सेवाभावी होना ही चाहिए। महावीर और बुद्धने इस अहिंसाद्वारा ही जनताको बड़ी शान्ति पहुँचायी थी और यही उन दोनों महापुरुषोंकी लोकोत्तर सेवा थी, जिसमें जनताके कल्याण और अभ्युदयकी भावना तथा प्रयत्न समाया हुआ था। महात्मा गांधीने भी अहिंसासे राष्ट्रको स्वतन्त्र किया। वास्तवमें सेवा, परिचर्या, वैयावृत्य आदि अहिंसाके ही रूपान्तर हैं। कोई सेवा द्वारा, कोई परिचर्या द्वारा और कोई वैयावृत्य द्वारा जनताके कष्टोंको दूर करता है और यह कष्ट दूर करना ही अहिंसाकी साधना है।

डाक्टर सा०—आज आपने बहुत-सी दर्शन-सम्बन्धी गूढ़ बातोंकी चर्चा की, इसकी हमें प्रसन्नता है।

मैं—मुझे खुशी है कि आपने अपना बहुमूल्य समय इस वार्ताके लिए दिया, इसके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ।

यह वार्ता बड़ी मैत्री और सौजन्यपूर्ण हुई। लगभग आधे घंटे तक यह हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org